जैन गणित : परम्परा और साहित्य

☐ **वैद्या सावित्रीदेवी भटनागर,** २६, कानजी का हाटा, उदयपुर

जैन विद्वानों की गणितशास्त्र में अभूतपूर्व देन है। प्राचीन भारतीय गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण और अविस्मरणीय है। इन दोनों विद्याओं का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होने से इनके प्राचीन ग्रन्थों में ये दोनों विषय सम्मिलित हैं।

'समवायांगसूत्र' और 'औपपातिकसूत्र' में ७२ कलाओं में गणित को भी गिना गया है। आदितीर्थंकर ने अपनी पुत्री सुन्दरी को गणित की शिक्षा दी, ऐसा उल्लेख मिलता है। 'लेख' नामक 'कला' में लिपियों का ज्ञान सम्मिलित है। अठारह प्रकार की लिपियों में 'अंकलिपि' (१, २ आदि संख्यावाचक चिह्न) तथा 'गणितलिपि' (जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि चिह्नों का व्यवहार) का समावेश है।

चार प्रकार के अनुयोगों में एक 'गणितानुयोग' है। इस अनुयोग में 'सूर्यप्रज्ञप्ति' और 'चन्द्रप्रज्ञप्ति' का समावेश होता है।

गणित विद्या को 'संख्यान' भी कहते हैं। 'स्थानांगसूत्र' (१०/७४७) में दस प्रकार के संख्यान (गणित) का उल्लेख है—परिकर्म, व्यवहार, रज्जू (ज्यामिति), कलासवण्ण (कलासवर्ण), जावं, तावं, वर्ग, घन, वर्गावर्ग और विकल्प। 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' (२/१) तथा 'उत्तराध्ययनसूत्र' (२५/७, ३६) में 'संख्यान' (गणित) और 'जोइस' (ज्योतिष) का चौदह प्रकार के विद्यास्थानों में उल्लेख किया गया है।

महावीर ने गणित और ज्योतिष आदि विद्याओं में दक्षता प्राप्त की थी (कल्पसूत्र १/१०)। श्वेताम्बर परम्परा के आगम-साहित्य के अन्तर्गत 'सूर्यप्रज्ञप्ति' और 'चन्द्रप्रज्ञप्ति' नामक दो उपांग ग्रन्थों में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारों की गति के प्रसंग में गणित का वर्णन मिलता है।

दिगम्बर परम्परा में प्राप्त धरसेनाचार्यकृत 'षट्खंडागम' की टीका में टीकाकार वीरसेनाचार्य (८१६ ई०) ने गणित सम्बन्धी विवेचन में 'परिकर्म' का उल्लेख किया है।

'दृष्टिवाद' संज्ञक बारहवें अंग के पाँच भेदों में से एक 'परिकर्म' है। इसमें लिपिविज्ञान एवं गणित का विवेचन था। परिकर्म के पाँच भेद हैं—१. चन्द्रप्रज्ञप्ति, २. सूर्यप्रज्ञप्ति, ३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति। इनमें से प्रथम चार प्रज्ञप्तियों में गणितसूत्रों का प्रकाशन हुआ है।

दिगम्बर-मत में 'अंगप्रविष्ट' (१२ अंग) और 'अंगबाह्य' आगमसाहित्य के अतिरिक्त उसकी परम्परा में जो ग्रन्थ लिखे गये, उनको चार अनुयोगों में विभाजित किया जाता है। प्रथमानुयोग में पुराणों, चरितों और कथाओं के रूप में आख्यान ग्रन्थ समाविष्ट हैं; करणानुयोग में गणित और ज्योतिष सम्बन्धी ग्रन्थ आते हैं; चरणानुयोग में मुनियों व गृहस्थों के आचरणनियमों सम्बन्धी ग्रन्थ हैं, द्रव्यानुयोग में जीव, जड़ आदि दार्शनिक चिन्तन कर्म-सिद्धान्त और न्यायसम्बन्धी ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

करणानुयोग के ग्रन्थों में ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक, द्वीप, सागर, क्षेत्र, पर्वत, नदी आदि के स्वरूप और विस्तार का तथा गणित की प्रक्रियाओं के आधार पर वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थों से गणितसूत्रों और उनके क्रमविकास को समझने में बड़ी मदद मिलती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'गणिविद्या' (गणिविज्जा) नामक 'प्रकीर्णक' (अंगबाह्यग्रन्थ) में दिवस, तिथि, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त आदि सम्बन्धी ज्योतिष का विवेचन है, इसमें 'होरा' शब्द भी मिलता है, इसमें प्रसंगवश गणित के सूत्र भी शामिल हैं।[1]

परवर्तीकाल में जैनाचार्यों द्वारा विरचित गणित सम्बन्धी ग्रन्थों और ग्रन्थकारों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है—

तिलोयपण्णत्ति (छठी शती)—यतिवृषभ। त्रैलोक्य सम्बन्धी विषय को प्रस्तुत करने वाला प्राचीनतम ग्रन्थ है। रचना प्राकृत-गाथाओं में है। कहीं-कहीं प्राकृत-गद्य भी है। १८००० श्लोक हैं। कुल गाथायें ५६७७ हैं। अंकात्मक संदृष्टियों की इसमें बहुलता है। ९ महाधिकार हैं—सामान्यलोक, नारकलोक, भवनवासीलोक, मनुष्यलोक, तिर्यक्लोक, व्यन्तरलोक, ज्योतिर्लोक, देवलोक, सिद्धलोक।

इसकी रचना ई० ५०० से ८०० के बीच में हुई। सम्भवतः छठी शती में।

गणितसार-संग्रह (८५० ई० के लगभग)—यह मूल्यवान् कृति महावीराचार्य द्वारा विरचित है। यह दक्षिण के दिगम्बर जैन विद्वान थे। इनको मान्यखेट (महाराष्ट्र) के राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष का राज्याश्रय प्राप्त था। यह गोविन्द तृतीय (७९३-८१४ ई०) का पुत्र था। उसका मूल नाम शर्व था। राज्याभिषेक के समय उसने 'अमोघवर्ष' उपाधि ग्रहण की। इस नाम से वह अधिक विख्यात हुआ। उसे शर्व अमोघवर्ष भी कहते हैं। नृपतुंग, रट्टमार्तण्ड, वीरनारायण और अतिशयधवल उसकी अन्य उपाधियाँ थीं। राष्ट्रकूट राजाओं की सामान्य उपाधियाँ 'वल्लभ' और 'पृथ्वीवल्लभ' भी उसने धारण की थीं। इन उपाधियों में 'अमोघवर्ष' और 'नृपतुंग' विशेष प्रसिद्ध हैं। उसने छासठ वर्ष (८१४-८८० ई०) तक राज्य किया। पूर्व में वेंगी के चालुक्यों को पराजित कर अपने राज्य में मिला लिया था। अमोघवर्ष विद्वानों और कलाकारों का आश्रयदाता था। स्वयं भी विद्वान् और कवि था। कन्नड साहित्य का प्रथम काव्य 'कविराजमार्ग' है, जिसका रचयिता स्वयं अमोघवर्ष है। अनेक कन्नड लेखकों को उसने प्रश्रय दिया था। अमोघवर्ष की जैन धर्म और दर्शन के प्रति विशेष रुचि थी। आदिपुराण के रचयिता जिनसेन ने लिखा है कि वह अमोघवर्ष का आचार्य था।

जैन गणितज्ञ महावीराचार्य ने अपनी पुस्तक 'गणितसारसंग्रह' में अमोघवर्ष को जैन बताया है। वह धर्म-सहिष्णु था। उसने हिन्दू और जैन धर्म के समन्वय का प्रयत्न किया था।

साहित्य और विज्ञान के प्रति विशेष प्रेम के कारण उसके राजदरबार में ज्योतिष, गणित, काव्य, साहित्य, आयुर्वेद आदि विषयों के विद्वान् सम्मानित हुए थे। अमोघवर्ष के समय में अनेक प्रकाण्ड जैन विद्वान् हुए।

गणितसारसंग्रह ग्रन्थ के प्रारम्भ में महावीराचार्य ने भगवान् महावीर और संख्याज्ञान के प्रदीप स्वरूप जैनेन्द्र को नमस्कार किया है—

---

१. वैदिक परम्परा में छः वेदांगों में ज्योतिष को गिना गया है। ज्योतिष का मूल ग्रन्थ 'वेदांगज्योतिष' है, इसके दो पाठ हैं—ऋग्वेदज्योतिष और यजुर्वेदज्योतिष। ज्योतिष के दो विभाग हो गये हैं—गणितज्योतिष और फलितज्योतिष। इनमें से गणितज्योतिष प्राचीन है। ज्योतिष के निष्कर्ष गणित पर आधारित हैं। अतः वेदांगज्योतिष (श्लोक ४) में समस्त वेदांगशास्त्रों में गणित को सर्वोपरि माना गया है—

यथा शिखा मयूराणां, नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदांगशास्त्राणां, गणितं मूर्ध्नि संस्थितम्॥

अर्थात्—जिस प्रकार मोरों में शिखाएँ और नागों में मणियाँ सिर पर धारण की जाती हैं, उसी प्रकार वेदांगशास्त्रों में गणित सिर पर स्थित है अर्थात् सर्वोपरि है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलंघ्यं त्रिजगत्सारं यस्याऽनंतचतुष्टयम् ।
नमस्तस्मै जिनेन्द्राय महावीराय तायिने ॥ १ ॥
संख्याज्ञानप्रदीपेन जैनेन्द्राय महत्विषा ।
प्रकाशितं जगत्सर्वं येन तं प्रणमाम्यहं ॥ २ ॥

इसके बाद राजा अमोघवर्ष, नृपतुंग की प्रशस्ति में ६ पद्य हैं। राजा अमोघवर्ष के जैनदीक्षा लेने के बाद उसे सब प्राणियों को सन्तुष्ट करने तथा नीरीति निरवग्रह करने वाला 'स्वेष्टाहितैषी' बतलाया है—

प्रीणितः प्राणिसस्यौघो नीरीतिर्निरवग्रहः ।
श्रीमताऽमोघवर्षेण येन स्वेष्टाहितैषिणा ॥ ३ ॥

उसने पापरूपी शत्रुओं को अनीहित चित्तवृत्ति रूपी तपोग्नि में भस्म कर दिया था और कामक्रोधादि अन्तरंग शत्रुओं पर विजय पा लेने से 'अवन्ध्यकोप' बन गया था। सम्पूर्ण संसार को वश में करने और स्वयं किसी के वश में नहीं होने से 'अपूर्वमकरध्वज' बन गया था। राजमंडल को वश में करने के साथ तत्पश्चरण द्वारा संसारचक्र के भ्रमण को नष्ट करने वाले रत्नगर्भ (सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप रत्नत्रय), ज्ञान और मर्यादावज्रवेदी द्वारा चारित्ररूपी समुद्र को पार कर लिया था—

पापरूपाः परा यस्य चित्तवृत्ति हविर्भुजि ।
नाभिभूतः प्रभुस्तस्मादपूर्वमकरध्वजः ॥ ५ ॥
यो विक्रमक्रमाक्रांतचक्रिचक्रकृतिक्रियः ।
चक्रिकाकारमंजनो नाम्ना चक्रिकामंजनो जसा ॥ ६ ॥
यो विद्यानद्यधिष्ठानो मर्यादावज्रवेदिकः ।
रत्नगर्भो यथाख्यात चारित्रजलधिर्महान् ॥ ७ ॥

इन विवरणों से अमोघवर्ष की मुनिवृत्ति का परिचय मिलता है। राजा अमोघवर्ष ने अन्तिम दिनों में विवेकपूर्वक राज्य छोड़कर जैनमुनि के रूप में जीवन बिताने का उल्लेख उसने स्वयं अपनी रत्नमाला के अन्तिम पद्य में किया है।

गणितसार संग्रह ग्रन्थ में अमोघवर्ष नृपतुंग के शासन काल की वृद्धि की कामना की गई है—

विध्वस्तैकांतपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिनः ।
देवस्य नृपतुंगस्य वर्द्धतां तस्य शासनम् ॥८॥

महावीराचार्य की दो कृतियाँ मिलती हैं—**गणितसारसंग्रह** (**समुच्चय**) और **षट्त्रिंशिका**; तथा ज्योतिष पर **ज्योतिषपटल**। गणित और ज्योतिष का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। ज्योतिष के दो अंग हैं—एक गणित-ज्योतिष और दूसरा फल-ज्योतिष। अतः महावीराचार्य के गणित सम्बन्धी दोनों ग्रन्थ भी ज्योतिष के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

गणितसारसंग्रह ग्रन्थ में कहीं रचनाकाल का उल्लेख नहीं है, परन्तु उसमें नृपतुंग के शासन की वृद्धि की कामना की गई है, अतः इसकी रचना अमोघवर्ष के काल में ही हुई थी। इसमें अमोघवर्ष की जैनमुनितुल्य वृत्तियों के सम्बन्ध में बताया गया है। अतः यह कृति उसके शासनकाल के अन्तिम दिनों में लिखी गई प्रतीत होती है। इसी आधार पर इसकी रचना ८५० ई० के लगभग होने का अनुमान होता है।

प्रारम्भ के 'संज्ञाधिकार' में गणित के महत्त्व को स्वीकार करते हुए बताया गया है—संसार के सब व्यापारों (लौकिक, वैदिक और सामाजिक) में संख्या का उपयोग किया जाता है। कामतन्त्र, अर्थशास्त्र, गन्धर्वशास्त्र, नाटक, सूपशास्त्र, वैद्यक, वास्तुविद्या, छन्द, अलंकार, काव्य, तर्क, व्याकरण समस्त कलाओं में गणित प्राचीन काल से प्रचलित है। (ज्योतिष के अन्तर्गत) सूर्यादि ग्रहों की गति, ग्रहण, ग्रहसंयोग, त्रिप्रश्न, चन्द्रवृत्ति, सर्वत्र गणित स्वीकार किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है। द्वीप, समुद्र, पर्वत का संख्या से ही व्यास और परिक्षेत्र (विस्तार) ज्ञात किया जाता है। संसार की सब बातें गणित पर आश्रित हैं—

लौकिके वैदिके चापि तथा सामाजिके च यः ।
व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते ॥६॥
कामतंत्रेऽर्थशास्त्रे च गांधर्वे नाटकेऽपि वा ।
सूपशास्त्रे तथा वैद्ये वास्तुविद्यादि वस्तुषु ॥१०॥
छन्दोऽलंकारकाव्येषु तर्कव्याकरणादिषु ।
(टीका) लिखी है। इसमें लीं कलागुणेषु सर्वेषु प्रस्तुतं गणितं पुरा ॥११॥
ज्योतिष पर इन्होंने सूर्यादिग्रहचारेषु ग्रहणे ग्रहसंयुतौ ।
लघुनमस्कारचक्र, ऋषिमंडलयंत्रस त्रिप्रश्ने चन्द्रवृत्तौ च सर्वत्रांऽगीकृतं हि तत् ॥१२॥
सिद्ध-भू-पद्धति— अज्ञातकर्तृक सागरशैलानां संख्या-व्यासपरिक्षिपः ।
इस पर दिगम्बर वीरसेन व्यंतरज्योतिर्लोककल्पाऽधिवासिनाम् ॥१३॥
ना काणां च सर्वेषां श्रेणीबद्धेन्द्रकोत्तरा ।
र्णकप्रमाणाद्या बुध्यते गणितेन तु ॥१४॥
प्राणिनां तत्र संस्थानामायुरष्टगुणादयः ।
यात्राद्यास्संहिताद्याश्च सर्वे ते गणिताश्रयाः ॥१५॥
बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरं ।
यत्किंचिद्वस्तु तत्सर्वं गणितेन विना न हि ॥१६॥

महावीराचार्य के मत में तीर्थंकरों की वाणी से गणित का उद्भव हुआ है। तीर्थंकरों के शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा प्रकट 'संख्याज्ञानरूपसागर' से समुद्र से रत्न, पाषाण से सुवर्ण और शुक्ति से मोती निकालने के समान कुछ सार लेकर इस ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ छोटा होने पर भी विस्तृत अर्थ को बताने वाला है—

तीर्थकृद्भ्यः कृतार्थेभ्यः पूज्येभ्यो जगदीश्वरैः ।
तेषां शिष्यप्रशिष्येभ्यः प्रसिद्धाद्गुरुपर्वतः ॥१७॥
जलधेरिव रत्नानि पाषाणादिव कांचनम् ।
शुक्तेर्मुक्ताफलानीव संख्याज्ञानमहोदधेः ॥१८॥
किंचिदुद्धृत्य तत्सारं रक्ष्येऽहं मतिशक्तितः ।
अल्पग्रन्थमनल्पार्थं गणितं सारसंग्रह ॥१९॥

प्रथम संज्ञाधिकार के अन्त में पुष्पिका दी है—

'इतिसारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यकृतौ संज्ञाधिकारः समाप्तः।

यह ग्रन्थ प्रो० रंगाचार्य कृत अँग्रेजी टिप्पणियों के साथ सम्पादित होकर मद्रास से सन् १९१२ में प्रकाशित हो चुका है।

इसमें ९ प्रकरण हैं—संज्ञाधिकार, परिकर्मव्यवहार, कलासवर्णव्यवहार, प्रकीर्णव्यवहार, त्रैराशिकव्यवहार, मिश्रकव्यवहार, क्षेत्रगणितव्यवहार, खातव्यवहार और छायाव्यवहार।

इसमें २४ अंक तक की संख्याओं का उल्लेख है—१ एक, २ दश, ३ शत, ४ सहस्र, ५ दशसहस्र, ६ लक्ष, ७ दशलक्ष, ८ कोटि, ९ दशकोटि, १० शतकोटि, ११ अर्बुद, १२ न्यर्बुद, १३ खर्व, १४ महाखर्व, १५ पद्म, १६ महापद्म, १७ क्षोणी, १८ महाक्षोणी, १९ शंख, २० महाशंख, २१ क्षिति, २२ महाक्षिति, २३ क्षोभ, २४ महाक्षोभ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंकों के लिए विशेष शब्दों का व्यवहार मिलता है—यथा ३ के लिए रत्न, ६ के लिए द्रव्य, ७ के लिए तत्व, पन्नग और भय, ८ के लिए कर्म, तनु, मद, और ९ के लिए पदार्थ आदि।

इसमें अंकों सम्बन्धी ८ परिकर्मों का उल्लेख किया है—जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन और घन-मूल। शून्य और काल्पनिक संख्याओं का विचार भी किया गया है। भिन्नों के भाग के विषय में मौलिक विधियाँ दी हैं।

लघुसमावर्तक का आविष्कार महावीराचार्य की अनुपम देन है।

रेखागणित और बीजगणित की अनेक विशेषताएँ इस ग्रन्थ में मिलती हैं। त्रिभ
गणित की विशिष्ट विधियाँ दी हैं। समीकरण को व्यावहारिक प्रश्नों द्वारा स्पष्ट कि
समकुट्टीकरण, विषमकुट्टीकरण और मिश्रकुट्टीकरण आदि गणित की विधियों का
यह ग्रन्थ भास्कराचार्यकृत लीलावती से बड़ा है। महावीराचार्य ने
श्रीधर के 'त्रिशतिका' का उपयोग किया है। गणित के क्षेत्र में महावीराचा
कीर्तिमान है, जो उनकी अमरकीर्ति का दीपस्तम्भ है।

और कामक्रोधादि अन्तरंग
रने और स्वयं किसी के वश में
थ तत्पश्चरण द्वारा संसारचक्र के
न्न और मर्यादावज्रवेदी द्वारा

दक्षिण भारत में इस ग्रन्थ का बहुमान है। इस पर वरदराज आदि की संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हैं। ११वीं शती में पावुलूरिमल्ल ने इसका तेलुगु में अनुवाद किया है। वल्लभ ने कन्नड़ में तथा अन्य विद्वान् ने तेलुगु में टीका लिखी है।

षट्त्रिंशिका (८५० ई० के लगभग)—महावीराचार्य कृत। यह लघु कृति है, जिसमें बीजगणित के व्यवहार दिये हैं।

व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित, व्यवहाररत्न, जैन-गणित-सूत्र-टीकोदाहरण और **लीलावती** (सं० ११७७, ई० ११२०)

ये सब ग्रन्थ कन्नड़ भाषा में हैं। इनके लेखक राजादित्य नामक कवि-विद्वान् थे। यह दक्षिण में कर्नाटक क्षेत्रांतर्गत कोंडिमंडल के 'यूविनवाग' नामक स्थान के निवासी थे। इनके पिता का नाम श्रीपति और माता का नाम वसन्ता था। इनके गुरु का नाम शुभचन्द्रदेव था। ये विष्णुवर्द्धन राजा के मुख्य सभापण्डित थे। अतः इनका काल ई० सन् ११२० के लगभग है। इनको 'राजवर्म', 'भास्कर' और 'वाचिराज' भी कहते थे। ये कन्नड़ के प्रसिद्ध कवि और गणित-ज्योतिष के महान् विद्वान् थे। 'कर्णाटक कविचरित' में इनको कन्नड़ भाषा में गणित का ग्रन्थ लिखने वाला सबसे पहला विद्वान् बताया है।

पाटीगणित (सं १२६१, ई० १२०४) अनन्तपालकृत। यह पल्लीवाल जैन गृहस्थ विद्वान् थे। इसके ग्रंथ पाटी-गणित में अंकगणित सम्बन्धी विवरण है।

अनन्तपाल ने नेमिचरित महाकाव्य रचा था। उसके भाई धनपाल ने सं० १२६१ में 'तिलकमंजरीकथासार' बनाया था।

कोष्ठकचिंतामणि (१३ वीं शती)—शीलसिंहसूरिकृत। ये आगमगच्छीय आचार्य देवरत्नसूरि के शिष्य थे। इनका काल १३वीं शती माना जाता है। इनका गणित सम्बन्धी 'कोष्ठकचिंतामणि' नामक ग्रन्थ प्राकृत में १५० पद्यों में लिखा हुआ है। इसमें ९, १६ २० आदि कोष्ठकों में अंक रखकर चारों ओर से मिलने पर अंक समान आते हैं। इसमें अनेक मन्त्र भी दिये हैं।

इन्होंने अपने ग्रन्थ पर संस्कृत में 'कोष्ठकचिंतामणि-टीका' लिखी है।

गणितसंग्रह—यत्लाचार्यकृत। ये प्राचीन जैनमुनि थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्रगणित—नेमिचन्द्रकृत। इसका उल्लेख जिनरत्नकोश (पृ० ९८) में दिया हुआ है।

इष्टपंचविंशतिका—मुनि तेजसिंहकृत। यह लोंकागच्छीय मुनि थे। गणित पर इनका यह छोटा-सा ग्रन्थ २६ पद्यों में प्राप्त है।

गणितसार-टीका—सिद्धसूरिकृत। ये उपकेशगच्छीय मुनि थे। इन्होंने श्रीधरकृत गणितसार पर टीका लिखी थी।

गणितसार-वृत्ति (सं० १३३०, ई० १२७३)—सिंहतिलकसूरिकृत। ये ज्योतिष और गणित के अच्छे विद्वान् थे। इनके गुरु का नाम विबुधचन्द्रसूरि था। इन्होंने श्रीपतिकृत 'गणितसार' पर (सं० १३३०, ई० १२७३) में वृत्ति (टीका) लिखी है। इसमें लीलावती और त्रिंशतिका का उपयोग किया गया है।

ज्योतिष पर इन्होंने 'भुवनदीपकवृत्ति' लिखी। मंत्रराजरहस्य, वर्धमानविद्याकल्प, परमेष्ठिविद्यायंत्रस्तोत्र, लघुनमस्कारचक्र, ऋषिमंडलयंत्रस्तोत्र भी इनके ग्रन्थ हैं।

सिद्ध-भू-पद्धति—अज्ञातकर्तृक यह प्राचीन ग्रन्थ है। यह क्षेत्रगणित विषयक ग्रन्थ है।

इस पर दिगम्बर वीरसेनाचार्य ने टीका लिखी थी। इनका जन्म वि० सं० ७९५ एवं मृत्यु सं० ८८० हुई। ये आर्यनंदि के शिष्य, जिनसेनाचार्य के गुरु तथा गुणभद्राचार्य (उत्तरपुराण-कर्त्ता) के प्रगुरु थे।

इन्होंने दिगम्बर आगम ग्रन्थ 'षट्खण्डागम' (कर्मप्राभृत) के पाँच खंडों पर 'धवला' नामक टीका सं० ८७३ में लिखी। इस व्याख्या में इन्होंने गणित सम्बन्धी अच्छा विवरण दिया है। इससे इनकी गणित में अच्छी गति होना प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त वीरसेनाचार्य ने 'कसायपाहुड' पर 'जयधवला' नामक विस्तृत टीका लिखना प्रारम्भ किया, परन्तु बीच में ही उनका देहान्त हो गया।

गणितसूत्र—अज्ञातकर्तृक। किसी दिगम्बर जैन मुनि की कृति है। इसकी हस्तप्रति जैन सिद्धांत भवन आरा में मौजूद है।

यंत्रराज (श० ११९२, ई० १२७०)—महेन्द्रसूरिकृत—यह ग्रहगणित सम्बन्धी उपयोगी ग्रन्थ है।

गणितसारकौमुदी (ई० १४वीं शती प्रारम्भ)—ठक्कुर फेरूकृत। यह जैन श्रावक थे। मूलतः राजस्थान के कन्नाणा के निवासी और श्रीमालवंश के धंधकुल में उत्पन्न हुए थे। इस ग्रन्थ की रचना सं० १३७२ से १३८० के बीच हुई थी। यह अप्रकाशित है।

ठक्कुर फेरू दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के कोषाधिकारी (खजांची) थे।

गणितसारकौमुदी प्राकृत में है। इसकी रचना भास्कराचार्य की लीलावती और महावीराचार्य के गणितसार-संग्रह पर आधारित है। विषय विभाग भी लीलावती जैसा ही है। क्षेत्रव्यवहारप्रकरण के नामों को स्पष्ट करने के लिए यंत्र दिये हैं। यंत्रप्रकरण में अंकसूचक शब्दों का प्रयोग है। तत्कालीन भूमिकर, धान्योत्पत्ति आदि विषय नये हैं।

ठक्कुर फेरू के अन्य ग्रन्थ—वास्तुसार, ज्योतिस्सार, रत्नपरीक्षा, द्रव्यपरीक्षा (मुद्राशास्त्र), भूगर्भप्रकाश, धातूत्पत्ति युगप्रधान चौपई हैं। पहली सात रचनाएँ प्राकृत में हैं। अन्तिम रचना लोकभाषा (अपभ्रंश बहुल) में है।

लीलावतीगणित (१६८२ ई०)—कवि लालचन्दकृत। ये बीकानेर के निवासी थे। इनका दीक्षानाम लाभवर्द्धन था। इनके गुरु शांतिहर्ष और गुरुभ्राता जिनहर्ष थे। हिन्दी पद्यों में लीलावतीगणित की रचना सं० १७३९ (१६८२ ई०) में बीकानेर में की थी। अन्य रचनाएँ गणित पर 'अंकप्रसार' तथा 'स्वरोदयभाषा', 'शकुन दीपिका-चौपई' भी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंकप्रस्तार (१७०४ ई०)—कवि लालचंदकृत। परिचय ऊपर दिया है। इनकी रचनाएँ सं० १७६१, (१७०४ ई० में) 'गूढ़ा' में हुई हैं।

ऐंचूवडि—तमिल भाषा में गणित सम्बन्धी ग्रन्थ है। यह जैनकृति है। इसका व्यवहार व्यापारी परम्परा में विशेष रूप से रहा है।[1]

उपर्युक्त विवरण में दिये गये ग्रन्थों के अतिरिक्त गणित पर अन्य ग्रन्थ भी मिलते हैं। कुछ ग्रन्थ ज्योतिष सम्बन्धी गणित पर मुख्य रूप से लिखे गये हैं।

भारतीय प्राचीन परम्परा में गणित का उपयोग त्रिलोकसंरचना, राशिसिद्धान्त की व्याख्या और कर्मफल के अंश व फल निरूपण हेतु मुख्य रूप से हुआ है। वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, आयुर्वेद और अन्य विद्याओं में भी गणित का भरपूर उपयोग हुआ है।

१ पं० कैलाशचंद्र, दक्षिण में जैनधर्म, पृ० ६०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org